

मृच्छकटिकम् में प्रतिबिम्बित शूद्रककालीन वास्तुकला

सर्वज्ञभूषण

प्रवक्ता (संस्कृत)

रा०इ०का०बरगढ,चित्रकूट(उ०प्र०)

महाकवि शूद्रक की रचना 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण एक 'सामाजिक रूपक' है। शूद्रक ब्राह्मणों में प्रथम स्थान रखनेवाले, अपार शक्ति से युक्त, सुन्दर आकृति से विभूषित कविश्रेष्ठ थे ऋक्, साम आदि वेदों तथा गणित, संगीत, नृत्यकला और गजशास्त्र में भी निपुण थे, त्रयम्बक भगवान् शिव के प्रसाद स्वरूप अज्ञानान्धकार से मुक्त दिव्यदृष्टि प्राप्तकर, पुत्र को राज्य हस्तान्तरित कर अश्वमेध यज्ञ करके, शतायु से 10 दिन अधिक आयु प्राप्त करके अग्नि में प्रवेश किया था, वे महायोद्धा होने के साथ-साथ तपस्वी एवं वेद ज्ञाताओं में अग्रणी थे, ऐसा किसी परवर्ती कवि ने मृच्छकटिक की प्रस्तावना में तीन पद्यों के माध्यम से व्यक्त किया है

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णन्दुमुखरु सुविग्रहश्च ।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः ॥
ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथकलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां ।
ज्ञात्वा शर्वप्रसादात् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ॥
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा ।
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ॥
समरव्यसनी प्रमादशून्यः ककुदो वेदविदां तपोधनश्च ।
परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव ॥¹

मृच्छकटिकम् में कविवर शूद्रक ने उज्जयिनी की गणिका वसन्तसेना एवं विपणिजीवी चारुदत्त की प्रणयकथा को प्रकरण रूप में परिणत किया है। इस प्रकरण में शूद्रक ने तत्कालीन यथार्थ एवं सामाजिक परिदृश्य के कठोर धरातल की यथार्थ प्रस्तुति में संकोच को तनिक भी नहीं आने दिया और दस अङ्कों में तत्कालीन समाज एवं नायक चारुदत्त तथा नायिका वसन्तसेना के प्रणय को मार्मिक रूप से चित्रित किया है वस्तुतः 'मृच्छकटिकम्' प्रकरण में कुलस्त्री एवं गणिका दो नायिकायें हैं। साहित्यदर्पणकार के अनुसार—

'नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ।'²

यहाँ वसन्तसेना का चरित्र मुख्य नायिका के रूप में चित्रित है तथा धूता कुलस्त्री रूप में वर्णित है, यह चारुदत्त की विवाहिता पत्नी है तथा पतिव्रता स्त्री के रूप में दर्शकों के सामने प्रस्तुत होती है। नायक चारुदत्त भी एक उच्च कोटि का आदर्श प्रेमी है। चारुदत्त यद्यपि वसन्तसेना से प्रेम करता है परन्तु वह इस विषय में सावधान है, वह स्त्रीलम्पट नहीं है। वह अपनी धर्मपत्नी धूता को पूरी निष्ठा और अटूट प्रेम करता है। मृच्छकटिक में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का वर्णन है जिसका स्थान उज्जयिनी नगरी है। पहले अङ्क की घटना राजमार्ग से प्रारम्भ होती है तथा अन्त में चारुदत्त के भवन इत्यादि का वर्णन है।

'प्रदोषवेलायामिह राजमार्गं गणिका विटाश्चेटा राजवल्लभाश्च पुरुषाः संचरन्ति ।'^{2अ}

द्वितीय अङ्क में राजमार्ग का वर्णन तथा बाद में वसन्तसेना के शोभायमान बृहद् भवन का वर्णन प्राप्त होता है। तत्कालीन वास्तुकला की महत्ता प्रदर्शित होती है। सम्पूर्ण दस अङ्कों में शूद्रक कालीन समाज का वैभव पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है और सम्पूर्ण कला-संस्कृति, आचार-व्यवहार, व्यापार की एक झलक प्रस्तुत प्रकरण में दर्शनीय है। अतः मृच्छकटिक के आधार पर तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य के अनुशीलन का महत्त्वपूर्ण विषय 'वास्तुकला' का विस्तृत अध्ययन किया जा रहा है। आइये मृच्छकटिकम् के आधार पर शूद्रक कालीन वास्तुकला को शोध के धरातल पर उतारते हैं।

मृच्छकटिक में घोष , ग्राम, पुर, नगर, राजमार्ग, चतुष्पथ, रथ्या-विभाग, प्रासाद, गृह, वेश्म, गेह, हर्म्य, यूप, गृहदारु (काष्ठ स्तम्भ), सभा, प्राकार, वेदिका, आपण, देवमन्दिर, आराम, विहार, उद्यान अथवा वृक्षवाटिका , पुष्करिणी, तडाग, हृद् आदि के वर्णन से तत्कालीन अत्यन्त विकसित वास्तुविद्या पर प्रकाश पड़ता है।³

घोष, ग्राम, पुर तथा नगर-

पाणिनि के अनुसार ग्वालों के गाँव घोष कहलाते थे। शकट (बैलगाड़ी) पर स्थित भाण्डों तथा गोसमूह के साथ व्यापार रहित गोपालों द्वारा यथेच्छ विकसित भूमि ही घोष कहलाती थी

**शकटारूढभाण्डैश्च गोपालैर्विपणं विना ।
गोसमूहैस्तथाघोषो यत्रेच्छाभूमिकेतनः ।।⁴**

इस विवरण से ज्ञात होता है कि गोपालक लोग यायावर जीवन व्यतीत करते थे और अस्थायी रूप से इच्छानुसार किसी भूमि पर निवास करते थे। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार पशुओं के गोष्ठ स्थान, नये-नये चारे की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटते रहते थे।

घोष में रहने वाले व्यक्ति के लिए ही 'घोषी' शब्द प्रचलित हुआ होगा जो आज दूध के व्यवसाय में लगी एक जाति के लिए रूढ़ हो गया है। प्रायः शूद्रजनों और स्वसमृद्ध किसानों को उपयोग्य भू-क्षेत्र के मध्य स्थित बस्तियों की संज्ञा -'ग्राम' थी-

**तथा शूद्रजनप्रायाः स्वसमृद्ध कृषीबलाः ।
क्षेत्रोपयोग्यभूमध्ये वसतिग्रामसंज्ञिता ।।⁵**

पाणिनि ने ग्राम की वस्ती के लिए 'वसति' शब्द का प्रयोग किया है। मनु ग्राम के चारों ओर १०० धनुष (लगभग ६०० फुट) अथवा तीन बार लाठी फेंकने से जितनी दूर जा सके, उतनी भूमि गोचर के लिए छोड़ने को निर्देश देते हैं- **धनुः शतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ।।⁶**

जिसके पश्चात् खेत होते थे। डॉ० अग्रवाल लिखते हैं अनुमान होता है कि ग्राम- सन्निवेश का ढंग आजकल के जैसा ही था, अर्थात् बीच में बस्ती या आबादी होती थी उसके बाहर खाद डालने की भूमि या खत्ते, फिर गोचरभूमि या गोष्ठ, और फिर खेतिहर भूमि या क्षेत्र होते थे। मनु दो ग्रामों की सीमा के सन्धि स्थल पर तडाग, उदपान (कूप), वापी (बावली), प्रस्रवण (नहर) तथा देवायतन बनवाने का निर्देश देते हैं

**तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च
सीमासंधिषु कार्याणि देवायतनानि च ।।'**

ग्राम और नगर में मुख्य अन्तर यह था कि ग्राम बहुत छोटे और नगर बहुत बड़े सन्निवेश होते थे, किन्तु वास्तव में यह स्थिति पूर्वी भारत की थी। यूनानी भूगोल लेखकों ने लिखा है कि उत्तर-पश्चिम प्रदेश और पंजाब में 500 ऐसे "ग्राम" थे जिनकी आबादी पाँच से दस सहस्र के लगभग थी। स्वयं पाणिनि की गणसूची से इस बड़ी ग्राम-संख्या का समर्थन होता है। अतएव वाहीक देश में ग्राम और नगर का भेद बोलचाल में नहीं रह गया था, वहाँ दस-दस सहस्र के नगर भी "ग्राम" ही कहलाते थे। यही वस्तुस्थिति 'वाहीक ग्राम' और उदीच्य ग्राम' शब्दों से प्रकट होती है यहाँ ग्राम शब्द नगर और गाँव दोनों का बोध कराता है।

डॉ० अग्रवाल के अनुसार पुर और नगर स्थान नामों के अन्त में जुड़ने वाले महत्त्वपूर्ण एवं बहुव्यापी उत्तरपद थे, किन्तु उन्होंने पुर और नगर के बीच क्या अन्तर था, इस पर विचार नहीं किया।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार प्राचीन नगर या पुरों का सन्निवेश दुर्ग के ढंग पर ही किया जाता था और सुरक्षा या नगर गुप्ति के लिए गहरी खाई और ऊँची चहारदिवारी या परकोटे का निर्माण आवश्यक समझा जाता था।⁸

इस परकोटे को ही 'प्राकार' कहा जाता था, जिसका उल्लेख मृच्छकटिक में उपलब्ध है। डॉ० अग्रवाल कहते हैं कि नगर निवेश करने वाले वास्तुविद्याचार्य (पालि वत्थुविज्जाचरिय जातक 1.297) तदर्थ निश्चित भूमि का पहले संस्कार करते थे (जातक 1.297 ; 423)। भूमिशोधन के बाद नगर मापन किया जाता था। (नगरं वेदेहेन सुमापितम् , महा उम्भग जातक 6.448)। नगर निर्माण में परिखा, प्राकार और द्वार- इन तीन का निर्माण सर्वप्रथम होता था।

महाभारत में लिखा है कि "जिस समय युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया उन्होंने व्यास तथा कृष्ण आदि प्रतिष्ठित पुरुषों को बुलाकर आरम्भिक उत्सव किया और नगर के लिए नियत भूमि पर सूत्रमापक से इस बात का निश्चय किया कि परिखा, प्राकार, राजप्रसाद , गोपुर, एवं चत्वर, वीथी आदि का स्थान कहाँ-कहाँ रहेगा। इसी को नगरमापन कहते थे।"

राजमार्ग, चतुष्पथ, रथ्याविभाग-

ग्रामान्तर एवं नगरान्तर को मिलाने वाली चौड़ी तथा बड़ी सड़कें 'राजमार्ग' कहलाती थीं। शूद्रक ने सन्ध्या काल से राजमार्ग पर गणिकाओं, विटों तथा राजवल्लभों एवं राजपुरुषों आदि के घूमने-टहलने का उल्लेख किया है। एक मार्ग को काटकर जाने वाले मार्ग को 'सन्धि चतुष्पद' कहते थे।

चौराहे के लिए 'चतुष्पथ' के अतिरिक्त 'चत्वर' शब्द भी प्रचलित था। मृच्छकटिक में चतुष्पथ पर मातृदेवियों को बलि दिये जाने का उल्लेख मिलता है। अन्यत्र इसी ग्रन्थ में कहा गया है कि चतुष्पथ पर दिये जाने वाले उपहार को कुत्ते चट कर जाते थे

.....चतुष्पथे मातृभ्यो बलिमुपहर ।

.....जनैः चतुष्पथोपनीतः उपहारः कुक्कुरैरिव खाद्यमाने विपत्स्थे।⁹

इससे ज्ञात होता है कि चतुष्पथ पर बलि देना एक प्रथा थी। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार रथों का समूह 'रथ्या' या 'रथकट्टया' कहलाता था। (४.२.५.५९)। पर रथ्या शब्द रथ्य में राय् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है,

जिसका अर्थ है रथ चलाये जाने योग्य सड़क। मृच्छकटिक में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। एक स्थान पर रथ्याओं द्वारा आपण (बाजार) के विभक्त होने का उल्लेख मिलता है। स्पष्ट है कि नगर योजनाबद्ध रूप होने का उल्लेख मिलता है स्पष्ट है कि नगर योजनाबद्ध रूप से बसाये जाते थे और राजमार्ग, चतुष्पथ प्रासाद, हर्म्य, गृह, वेश्म—तथा चत्वर वास्तु विन्यास के ही अंग थे। प्रासाद अथवा हर्म्य राजमहल की संज्ञा थी। सामान्य घर— गृह, गेह अथवा वेश्म कहलाते थे। मृच्छकटिक में चतुःशाल भवनों का उल्लेख है — **अलं चतुः शालमिमं प्रवेश्य।¹⁰** मत्स्यपुराण में चतुःशाल, त्रिशाल एवं द्विशाल इन तीन प्रकार के भवनों का वर्णन करते हुए बताया गया है कि जिस भवन के चारों ओर शालाएँ द्वार और आलिन्द (द्वार के सामने की चौकोर जगह या बरामदा) हो तो उसे सर्वतोभद्र' कहा जाता था। ऐसा भवन देवालय और राजप्रासाद के लिए शुभ माना गया है—

**चतुःशालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपान्नामतस्तथा ।
चतुःशालं चतुद्वारैरालिन्दैः सर्वतोमुखम् ॥
नाम्ना तत् सर्वतोभद्रं शुभ्रं देव नृपालये ।¹¹**

चतुःशाल भवनों में भी कभी—कभी तीन ही द्वार होते थे। पश्चिमद्वार से हीन चतुःशाल भवन 'नन्द्यावर्त', दक्षिण द्वार से हीन 'वर्धमान', पूर्व द्वार से हीन 'स्वस्तिक' तथा उत्तरद्वार से हीन 'रुचक' कहलाता था—

**पाश्चिमद्वारहीनं च नन्द्यावर्तं प्रचक्षते ।
दक्षिणद्वारहीनं तु वर्धमानमुदाहृतम् ।
पूर्वद्वारविहीनं तत् स्वस्तिकं नाम विश्रुतम् ।
रुचकं चोत्तरद्वारविहीनं तत् प्रचक्षते ।¹²**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चतुःशाल भवनों के सभी द्वार बाहर की ओर होते थे। ऐसे भवन देवालय अथवा राजप्रासाद के लिए ही उपयुक्त थे। सामान्य आवासीय भवनों के केवल एक अथवा दो ही द्वार बाहर की ओर होते थे, शेष भीतर की ओर। ऐसे भवनों को 'आभ्यन्तर चतुःशाल' कहा गया है 13, जिससे घर की भीतरी पौठ अभिप्रेत है।

प्रासाद सामान्यतया राजभवन का वाचक था, जिसका निर्माण दुर्ग के भीतर किया जाता था । मृच्छकटिक से ज्ञात होता है कि प्रासाद के सबसे ऊपरी तल पर कपोतपालिका का निर्माण किया जाता था—

.....प्रासाद —बालग्र— कपोतपालिकायामुपविष्टः ।¹⁴

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने गृह या प्रासाद को तीन मुख्य भागों में विभक्त किया है। उन्हीं के शब्दों में पहला भाग सामने के आँगन या अजिर समेत गृहद्वार था। दूसरा भाग सदम या बैठक थी जिसे सभा और बाद में 'आस्थानमण्डप' भी कहा जाता था। यह राजप्रासादों का वह भाग था जिसमें दरबार और अतिथि स्वागत भी किया जाता था। घर का तीसरा भाग 'पत्नीसदन' कहलाता था, इसी की संज्ञा 'अन्तःपुर' हुई। वैदिक युग में घर का चौथा भाग 'अग्निशाला' थी जहाँ श्रौत अग्नियों का आधान किया जाता था, उसे 'अग्निशरण' भी कहते थे। कालान्तर में राजप्रासादों को ही देवगृह कहा जाने लगा । यहाँ राजा ऋषि, मुनि, पुरोहित आदि अतिथियों का स्वागत करता था।" मृच्छकटिक में वसन्तसेना गणिका के विशाल गृह के द्वार तथा उसके पश्चात् सात प्रकोष्ठों का वर्णन मिलता है। द्वार के वर्णन में बहुमूल्य मणिरत्न जटित हाथी दाँतों के तोरणों तथा तोरण को रखने के लिए दोनों ओर बनी स्तम्भ एवं स्तम्भ वेदिकाओं का

उल्लेख किया गया है। साहित्य में अन्यत्र भी इसप्रकार के वर्णन उपलब्ध हैं जो निश्चित रूप से अतिशयोक्ति पूर्ण हैं। फिर भी तोरण द्वारों में उस समय की गयी पच्चीकारी एवं कलात्मक सजावट सचमुच सराहनीय होती थी।

गृहद्वारों की सफाई एवं भरपूर सजावट की जाती थी। वसन्तसेना के द्वार पर पानी छिड़क कर झाड़ू लगाकर गोबर से लीपे होने, भाँति-भाँति के फूलों से सुसज्जित होने, द्वार के ऊपरी भाग में हाथी की सूड़ जैसी मल्लिका की माला के लटकाये जाने तथा हरे हरे आम्रपल्लवों से सजे-स्तम्भों पर स्फटिक निर्मित मांगलिक कलश रखे होने और उन पर पताकाओं के फहरने का उल्लेख मिलता है। विशाल एवं अलंकृत तोरण द्वार बनवाने तथा उनमें मजबूत महाकपाट लगवाये जाने की प्रथा थी। ये कपाट 'दण्ड' से बन्द किये जाते थे। खुले हुए महाकपाट: को 'अदत्तदण्डो महाकपाटः' कहा गया है। वसन्तसेना के भवनद्वार में हीरों की कीलों से युक्त कनक कपाट लगे होने का उल्लेख है—

“सलिल-सिक्तमार्जित कृत – हरितोपलेपनस्य, विविधसुगन्धिकुसुमोपहार-चित्रलिखित-भूमिभागस्य
निरन्तर-प्रतिबिम्ब- कनककपाटस्य दुर्गतजनमनोरथायासकरस्य, वसन्तसेनाभवनद्वारस्य सश्रीकता।”

इदं गृहं भिन्नमदत्तदण्डो विशीर्णसन्धिश्च महाकपाटः ।
ध्रुवं कुटुम्बी व्यसनाभिभूतां दशां प्रपन्नो मम तुल्यभाग्यः ॥¹⁵

अतः उपर्युक्त अध्ययन के अनुसार मृच्छकटिक में प्रतिबिम्बित तत्कालीन समाज का जो परिदृश्य दिखाई पड़ता है उससे ज्ञात होता है कि उस समय एक तरफ जहाँ चारुदत्त की अत्यन्त उदारचरित्रता एवं दानशीलता के कारण उसकी निर्धनता वर्णित है वहीं दूसरी ओर गणिका वसन्तसेना की वेश्यावृत्ति एवं धनधान्य की सम्पन्नता वर्णित है। जहाँ एक तरफ हम शूद्रक कालीन समाज में व्याप्त दुःश्चरित्रता शकार के चरित्र में देखते हैं वही हमें तत्कालीन अत्यन्त निर्धन हो जाने पर भी चारुदत्त की सच्चरित्रता दर्शनीय है। एक ओर प्रारम्भ में हमें संवाहक की द्यूतक्रीड़ा में संलिप्तता दिखाई पड़ती है वहीं उसी के चरित्र में महान् परिवर्तन देखने को मिलता है जब वह बौद्धभिक्षु के रूप में दर्शकों के सामने आता है।

इसी प्रकार जहाँ एक तरफ उस समाज की वैभवपूर्ण स्थिति प्रदर्शित होती है वहीं दूसरी ओर चारुदत्त का भी दो स्वरूप देखने को मिलता है। यदि उसके चरित्र में उदारता थी तो यही उसके निर्धनता का कारण था परन्तु उसकी दानशीलता से पता चलता है कि वह अत्यन्त धनवान् ब्राह्मण जो विपणि कर्म में सिद्ध हस्त था। एक तरफ जहाँ हमें तत्कालीन बस्ती, ग्राम, नगर, भवन, प्रासाद, महल, उपवन, वन, उद्यान आदि का वर्णन प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर इनमें छिपी कला इनकी सुन्दरता से तत्कालीन उत्कृष्ट वास्तुशास्त्र का दर्शन होता है।

उससमय की तत्कालीन वास्तुकला की उत्कृष्टता मृच्छकटिक नामक प्रकरण में पदे-पदे परिलक्षित होती है। राजमार्ग का वर्णन, चौराहे, ग्राम, नगर एवं पुष्पकरण्डक उद्यान का विशद वर्णन वहाँ की घटनायें, उद्यान से लेकर भवन तक, समाज से लेकर राज तक, आचार से लेकर व्यवहार तक, व्यभिचार से लेकर सदाचार तक, आलय से लेकर न्यायालय तक, मकान से लेकर श्मशान तक सच्चरित्र से लेकर दुश्चरित्र तक, पात्र से लेकर कुपात्र तक का विस्तृत वर्णन एवं अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि शूद्रककालीन कला एवं संस्कृति अपने चरम पर प्राप्त होते हैं।

तत्कालीन संगीत कला, मूर्तिकला, संवाहन, शरीर दबाना और चौर्यकला तथा वास्तुकला प्रशंसनीय तथा उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शूद्रक कालीन वास्तुकला प्राचीन भारत के गौरवमयी इतिहास की वह कड़ी है जिस पर हमें गर्व होता है। तत्कालीन वास्तु व्यवस्थाएँ सुव्यवस्थित, सौन्दर्यपूर्ण तथा धन-धान्य से परिपूर्ण समाज में एक सुसंस्कृत, सुसज्जित, सुव्यवस्थित वास्तु शैली मृच्छकटिक के माध्यम से हमारे सामने प्रतिबिम्बित होती है।

।।इति।।

स्रोत

1. मृच्छ०, 1/3,4,5
2. सा०द० 6/242
- 2अ. मृच्छ०पृ०32
3. मृच्छ०,6.7 क, वही, 6.3 क, वही, 4.3ग, वही, पृ०- 329, वही, पृ० 455- 345
4. मार्क०, 46.50
5. मार्क. 46.47
6. मनु.8.237
७. मनु. 8.248
8. अग्रवाल, डॉ० वासुदेव शरण. पृ.141,76,77
9. मृच्छ., प30,86
10. मृच्छ.3.7
11. मत्स्य. 253, पृ०-883
12. मत्स्य. 253, पृ० 883
13. मृच्छ.,पृ. 57,147,287
14. मृच्छ. पृ. 75
15. मृच्छ. पृ. 212,213,228, 6.3

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. मृच्छकटिकम् – जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी –2015
2. मनुस्मृति – शिवराज आचार्य कौण्डिन्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – 2014
3. मत्स्यपुराण – कालीचरण गौड, बस्तीरामजी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी –2015
4. मार्कण्डेय पुराण – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – 2014